बुरा जो देखन मैं चला बुरा न मिलिया कोय

Bura jo Dekhan me chala Bura na Miliya koye

मानव प्रकृति की विभिन्नता : सृष्टि के निर्माता ब्रह्मा की सर्वोत्कृष्ट रचना है मानव । इनका निर्माण करने से पूर्व ब्रह्मा को बड़ा चिन्तन करना पड़ा होगा; क्योंकि यह प्राण युक्त वह चित्र है जिसमें हृदय एवं मस्तिष्क रूपी दो यन्त्र भी यथास्थान लगाने पड़े होंगे । उसने सोचा होगा कि एक समान यन्त्रों के लगाने से इनमें समानता रहेगी, किसी में अच्छे और बुरे की भावनाओं का अंकुर नहीं उपजेगा; पर परिणाम इसके विपरीत निकला। यन्त्रों की समानता होते हुए भी उनके विचारों, प्रकृतियों एवं भावनाओं में एक विशेष प्रकार की विभिन्नता दृष्टिगत हुई। हरेक मनुष्य दूसरों के गुणों-दोषों पर तो जी खोलकर टीका-टिप्पणी करता हुआ नहीं अघाता; पर अपनी बुराइयों की ओर से सदैव आँखें बंद रखता है। इस प्रकृति को देखकर तो विधाता स्वयं अपनी इस निर्माण कला पर चकित रह गया होगा, ऐसा विश्वास है।

इस विशेष प्रकार की विभिन्नता के कारण ही मानव चरित अत्यन्त गहन होता जा रहा है। किसी पदार्थ की अच्छाई-बुराई देखने के मापदण्ड सबके अपनी-अपनी प्रकृति के अनुसार होते हैं। सभी अपने को श्रेष्ठ और दूसरों को दुष्ट अथवा दुर्जन की उपाधि से सुशोभित करते हैं। इतना ही नहीं स्वयं को छोड़कर दूसरे की बुराइयों की खोज करना उसकी प्रवृत्ति में शामिल हो गया है। ऐसी इच्छा क्यों उत्पन्न हुई ? दूसरे के दोषों को देखने की लालसा उसमें क्यों जाग्रत हुई ? इस अवगुण का सारा दोष जाता है उसकी मूल प्रवृत्तियों पर।

मानव में ईष्र्या-द्वेष की भावना : आज के युग में मानव के दो सहचर हैं- ईष्र्या और द्वेष। इन्हीं के उकसाने पर वह दूसरों की उन्नति को सहन नहीं कर सकता है। उसका हृदय कुढन से भर उठता है। अमुक इतना ऊँचा क्यों उठ रहा है ? अमुक नाम कैसे चमक रहा। है? अमुक कैसे इतनी धन सम्पत्ति का स्वामी बन बैठा है ? अमुक क्यों जनता का प्रिय बन गया है ? इसी द्वेष के वशीभूत होकर बिना किसी मतलब के मानव दूसरों के कार्यों में दोष अथवा बुराइयाँ ढूँढने लग जाता है। स्वयं असमर्थ रह जाता है किसी न किसी हीनता के कारण। जो उन्नति के पथ पर हैं, उनको पथ भ्रष्ट करना उसका उद्देश्य-सा बन

गया है। निशवासर उनकी निन्दा करना उसकी आदत बन चुकी है। ऐसा व्यक्ति कदापि उन्नति नहीं कर सकता है। उसकी महत्त्वाकांक्षाएँ। मर चुकी होती हैं। ऐसी अवस्था में वह हरेक को अपने समान अथवा अपने से पतित देखना चाहता है। इस हेतु पर-गुणों में भी अवगुणों को खोजने के प्रयास में रहता है।

यदि कोई व्यक्ति चरित्रभ्रष्ट है, तो दूसरे विचारशील एवं चरित्रवान व्यक्ति उसकी आँखों में काँटें के समान चुभने लगते हैं। उसे सदैव एक ही चिंता सताती रहती है कि दूसरे भी मेरे समान ही बदनाम हो जाएँ । समाज से मिली हुई प्रतिष्ठा धूल में मिल जाए । ऐसी अवस्था में दूसरों के चरित्र का थोड़ा दोष भी उसकी आँखों में बहुत बन जाता है।

कर्तव्य को न समझना : इसके अतिरिक्त अधिकार एवं कर्तव्य का ठीक अनुपात न देख सकने के कारण से भी मानव को दूसरे दोषी दृष्टिगत होते हैं। अधिकारों की बाढ़ मानव को कर्तव्य के सोपान से गिरा देती है। इस अवस्था में वह कुछ करना चाहता है और सब कुछ कराने की इच्छा उसकी बलवती हो जाती है। आत्मगौरव को लेशमात्र भी ठेस से उसके कोप का पारावार नहीं रहता; पर दूसरों की बुराई करने, धज्जियाँ उड़ाने और छींटाकशी में उसे अनोखा आनन्द मिलता है। अपनी प्रशंसा के नगाड़े बजाता फिरता है। इस बीच यदि अन्य कोई प्रसंगवश अपना बड़प्पन जता दे, तो उसे धमण्डी, आत्म-प्रशंसक और छिछोरा कह कर उसका परिहास उड़ाने लगता है। दूसरे का राई के समान दोष मानव को पहाड़ दृष्टिगत होता है और इसके विपरीत अपने बड़े-से-बड़े दोष को भी झूठे गौरव के आवरण में ढक कर समीप रखना चाहता है। अपने यश के पीछे वह घिनौने से घिनौना कुकृत्य करने के लिए तत्पर हो जाता है। दूसरों को पीड़ा पहुँचाकर उसका हृदय संतोष की साँस लेता है। दूसरों की चिल्लाहट एवं रुदन सुनकर उसका हृदय बाँसों उछलता है; किन्तु यदि कोई उसके मार्ग में रोड़ा बनकर खड़ा हो जाए, तो वह उसके खुन का प्यासा हो जाता है। निन्दा कर-करके उसके जीवन को दूभर कर देता है।

अपने को अच्छा और दूसरे को बुरा कहने की प्रवृत्ति : एक घूसखोर को अपनी बुराई अथवा अवगुण भले ही दृष्टिगत न हों; किन्तु उसके परम मित्र को इस बुराई अथवा अवगुण की आलोचना किए बिना चैन नहीं पड़ती। एक पापी दूसरे को पापी कहता है और दुष्ट बतलाता है। एक चोर दूसरे की चोरी पर भला बुरा कहता है। ऐसा कथन इस संसार के प्रचलन में सम्मिलित हो गया।

वास्तव में मानव स्वयं से परिचित नहीं हो पाता। उसकी आँखें दूसरों के चरित्र को देखती हैं। उसका हृदय दूसरों की बुराइयों का अनुभव करता है। उसकी जिह्वा दूसरों के दोषों का विश्लेषण कर सकती है; किन्तु उसका अपना चरित्र, उसकी अपनी बुराइयाँ और उसका अपना मिथ्याभिमान, थोथे आत्मश्लाघा के मलीन आवरण में इस प्रकार प्रच्छन्न रहते हैं कि वह उन्हें जीते जी नहीं देख पाता है। इसी कारण से वह स्वयं को देवताओं की श्रेणी में गिनने लग जाता है।

आत्मालोचन की आवश्यकता : इस पर भी निन्दनीय आत्मा कभी आदर नहीं पा सकती है। छोटा व्यक्ति व मस्तिष्क अपनी क्षुद्र सीमा से दूर किसी भी वस्तु का मूल्यांकन नहीं कर सकता। अत: व्यक्ति स्वयं के द्वारा जितना ठगा जा सकता है, उतना किसी दूसरे के द्वारा नहीं।

उसमें आत्म-विश्लेषण करने की योग्यता नहीं आ पाती है। यह कोई सरल कार्य नहीं है। इसके लिए अत्यन्त उदार एवं सहनशील बनना पड़ता है। इसका यह मतलब नहीं है कि आत्म-विश्लेषण मनुष्य कर ही नहीं सकता है और यह कोई साधना की वस्तु है; अपितु अपनी अच्छाई-बुराइयों की अनुभूति उसमें सदैव रहती है। इनसे हरेक क्षण वह अवगत रहता है। इस पर वह भी अपनी बुराइयों को मानने के लिए उद्यत नहीं होता, यही उसकी दुर्बलता है और यही उसे आत्म- विश्लेषण की क्षमता प्राप्त नहीं होने देती है।

उसका हृदय इतना उदार एवं निर्मल नहीं होता कि वह अपने दोषों एवं अवगुणों को देखकर सहन कर सके। इसके अलावा दूसरों की बुराइयाँ करने में उसे एक प्रकार के आनन्द की प्राप्ति होती है और अपने दोषों के दर्पण को देखने से मिथ्या गौरव का पर्दा उठ जाता है। उसकी आँखें वास्तविकता के दर्शन करने लग जाती हैं। यह सब कुछ करना साधारण व्यक्ति का काम नहीं; क्योंकि यह सब कुछ उसकी बुद्धि के परे की बातें हैं।

हम दूसरों की निन्दा करते हुए, उसके आत्म-गौरव की आलोचना करते हुए यह कदापि नहीं सोचते कि इससे किसी के हृदय को कितनी ठेस पहुँच सकती है। किसी के चरित्र पर कीचड़ उछालते हुए हम इतना नहीं विचारते कि हम कितना भयंकर पाप करने जा रहे हैं। ऐसा करने से हमें किसी भी वस्तु की प्राप्ति नहीं होती; पर दूसरे की कितनी क्षति होती है, इसका कभी अनुमान लगाने का प्रयत्न नहीं किया।

आज सभ्यता एवं संस्कृति उन्नति के शिखर पर हैं, पर मानव प्रवृत्ति ज्यों की त्यों बनी हुई है।"वह हर क्षेत्र में दूसरों की बुराई ही हूँढने का प्रयत्न करता है। ऐसा करते हुए वह भूल जाता है कि उसे इसका अधिकार तभी है जबकि वह स्वयं गुणवान् हो, उसमें कोई भी दोष न हो; पर हम तो स्वयं ही दोषों का भण्डार हैं। दूसरों के दोष विवेचन करने से हमारे दोष और बढ़ जाते हैं। इसके विषय में डेविड ग्रेसन ने अपने विचार व्यक्त किए हैं, "जब कभी मुझे दोष देखने की लालसा होती है, तो स्वयं से प्रारम्भ करता हूँ और इससे आगे नहीं बढ़ पाता।"

उपसंहार : वास्तव में देखा जाए तो इस विश्व में कुछ भी बिगाड़ नहीं है, जो कुछ बिगाड़, जो कुछ कमी हम इसमें देख पाते हैं, वह सब हमारी है। इसका परिचय हमें हृदय को टटोलने से हो सकता है, अपनी आलोचना करने से हो सकता है। तब हमें प्रतीत होता है कि वे सब दोष एवं बुराइयाँ हमारे अन्दर ही भरी पड़ी हैं, जिनका हम अन्य लोगों में दर्शन करते हैं, उनका उपहास करते हैं और उन पर कीचड़ उछालते हैं। निर्गुण धारा के संस्थापक भक्त कबीर सत्य ही कह गये हैं।

बुरा जो देखन मैं चला बुरा न मिलिया कोय,

जो दिल खोजें आपना मुझ-सा बुरा न कोय ।"